Quest Journals
Journal of Research in Humanities and Social Science
Volume 4 ~ Issue 7 (2016) pp: 114-121
ISSN(Online):2321-9467
www.questjournals.org

Research Paper

'बिहारी सतसई' में लोक सन्दर्भ

डॉ.देशराज वर्मा
हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, राजगढ़ (अलवर) राज

शोध–पत्र सारांश

हिन्दी का रीतिकालीन साहित्य सामंती परिवेश में रचे जाने के बावजूद लोक एवं समाज के सरोकारों को छूने में समर्थ रहा है। सामंती दबाव तथा रूचि के समानांतर लोक सन्दर्भ एवं प्रकृति चित्रण की व्याप्ति को श्रृंगारेतर काव्य में देखा जा सकता है। रससिद्ध बिहारी की सतसई अपने लघुकलेवर वाली एकमात्र काव्य रचना है जो बिहारी को तुलसी के मानस बराबर लोकप्रियता प्रदान करती है। भक्ति, नीति, राजनीति, प्रकृति तथा श्रृंगार के तत्वों के भीतर लोक सन्दर्भों का स्पंदन बरबस आकृष्ट करता है। छोटे–छोटे सामाजिक चित्रों के भीतर नीति ज्ञान, ज्योतिष, आयुर्वेद, चिकित्सा ऋतुज्ञान, पर्व–त्योहार, आभूषण वस्त्र आदि के प्रसंग लोक का समाजशास्त्र रचने में समर्थ हो गये हैं। श्रृंगार तथा राधाकृष्ण का नायकत्व लोकरुचि तथा प्रेरणा का पर्याय बन गया है। अतः अतिशय श्रृंगार के आरोपों के समानान्तर उसकी लोकभूमि की पड़ताल भी इस शोध–पत्र में की जायेगी।

उद्देश्य

प्रत्येक मुक्तक पर सोने की मुहर पाकर भी अन्योक्ति के जरिये चेताने वाले बिहारी को रोबोट कवि नहीं माना जा सकता। दरबारीसंस्कृति के साथ लोक सन्दर्भों को भी अपने पाण्डित्य से मुखर करने की प्रवृत्ति बिहारी को लोकप्रिय ही नहीं वरन् अनूठा बनाती है। लोक सन्दर्भ प्रत्यक्ष रूप से मुखर न होकरपरिपार्श्वों तथा पृष्ठभूमि से व्यंजित हो उठे हैं। इस आलेख में इन्हीं सन्दर्भों–सरोकारों की पड़ताल करने का प्रयास किया गया है।

परिकल्पना

शास्त्र या शास्त्रीय को लोक और लोक साहित्य का मानक मानने की परम्परा रही है। वहीं लोक साहित्य को शास्त्र का जीवित और जीवंत रूप माना गया है। इस निकष पर 'बिहारी सतसई' में शास्त्रीय एवं सामन्तीय दबावों के बावजूद लोक के सन्दर्भों के कारण वह लोकप्रियता का मानक बन गई है। श्रृंगार के पर्याय राधाकृष्ण नीति–सदाचार, सन्तमतनिर्दिष्ट भक्ति सरोकार तथा लोकधर्मी बिम्ब और प्रतीक योजना के कारण बिहारी सतसई में लोक छवियों की आयोजना सहज बन पड़ी है। ये लोक सन्दर्भ ही बिहारी सतसई की स्वीकृत लोकप्रियता को साबित करने का कार्य करते हैं

सन्दर्भ स्रोत

प्रस्तुत शोध पत्र में प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का सहारा लेकर विषय को परिपुष्ट करने का प्रयास किया गया है। विषय के संदर्भ में मूल पुस्तकों के साथ–साथ आधिकारिक विद्वानों के विचार, व्यक्तिगत पर्यवेक्षण, डायरी, समाचार–पत्रों तथा वेब माध्यमों का भी यथायोग्य साभार उपयोग किया है। इस अध्ययन की प्रकृति साहित्यिक अध्ययन पर आधारित है।

'बिहारी सतसई' में लोक सन्दर्भ

रीतिकालीन के महाकवि बिहारी अपनी एक रचना के बल पर सर्वाधिक लोकप्रिय होने वाले रचनाकार रहे हैं। भारतीय साहित्य परम्परा में भक्तिकालीन तुलसी की होड़ लेने वाले एकमात्र कवि बिहारी ही हैं जिनसे उनके महत्व का पता लगता है। सच है कि 'रामचरित मानस' के बाद यदि सबसे अधिक टीकाभाष्य लिखे गये हैं तो एकमात्र 'बिहारी सतसई' पर लिखे गये हैं। उनका एक–एक मुक्तक हिन्दी का ही नहीं वरन् पूरी साहित्य परम्परा में व्यंजक पाण्डित्य का निकष बन गया है। एक ही दोहे के भीतर भक्ति, नीति, श्रृंगार, ज्योतिष, चिकित्सा न जाने किन–किन विषय सन्दर्भों की संश्लिष्ट अनुभूति एवं अभिव्यक्त का इन्द्रधनुष रंगायित हो उठता है। यह सच है कि सामन्तीय वातावरण एवं तत्युगीन परिवेष के दबावों के कारण उनके काव्य का युगबोध एवं मूल्य चेतना अधिक लोकधर्मी नहीं हो सका है; फिर भी श्रृंगार–रंजित, वर्ण्य–विषय के परिपार्श्वों तथा पृष्ठभूमि के भीतर लोकजीवन के सरोकार एवं संस्कार झाँकते नजर आते

हैं। लोकधर्मी चेतना का संस्कार बोध ही उन्हें सत्ता–प्रतिष्ठान से पुरस्कृत करवाता है। श्रृंगार रस के साधारणीकरण तथा राधा–कृष्ण के नायकत्व के कारण जनरूचि को भी वे आकृष्ट करने में सफल रहे हैं।

सच में उनमें सामंती परिवेष का दबाव एवं रूचि भी में उतनी नहीं है जितनी वीर रसात्मक काव्यकारों में देखने को मिलती है। सन्तमत निर्दिष्ट सदाचार, कृष्ण भक्ति का लोकानुरंजन, लोकानुभूति के नियामक नीति सन्दर्भ तथा जनभाषा ब्रज के लेखन–सरोकार आदि उन्हें लोकधर्मी घोषित करने में समर्थ हैं।इस क्रम में डॉ.विजयपाल सिंह का मत विचारणीय है– " 'रामचरित मानस' की लोकप्रियता में उसकी भक्तिमूलक स्थापना एवं लोक–मंगल की भूमिका काफी सहायक रही है, लेकिन 'बिहारी सतसई' की लोकप्रियता का मूलाधार शुद्ध रूप से साहित्य की लालित्य योजना ही है।"[1] लालित्य भी लोक एवं लोक साहित्य के आकर्षण का विषय रहता है। इस दृष्टि से लोकायन में प्रचलित बहुत सारे दोहों पर बिहारी का प्रभाव लक्षित होता रहा है। विष्वनाथ त्रिपाठी का मत भी विषय को पुष्ट करने के लिए पर्याप्त है– "बिहारी के श्रृंगारी दोहों में सामंती जीवन का वैभव–विलास ही नहीं चित्रित है, वे सामान्य गृहस्थ के दैनंदिन जीवन के भी सरस चित्र खींचते हैं। देवर, भाभी, जेठ, ननद, सास, पडोसिन, वैद्य, ज्योतिषी, खेत, बाग, सरोवर सब के सन्दर्भ में श्रृंगार के चित्र खींचते हैं। बिहारी का विषय सीमित है, लेकिन आधार फलक सीमित नहीं।..... बिहारी बहुज्ञ थे, उन्होंने अपनी विस्तृत जानकारी का उपयोग अपनी रचनाओं में किया है। एकाध दोहों में उन्होंने सामंतों को ठीक मार्ग पर चलने या नीति के पालने का उपदेष भी दिया है।"[2]

काव्य–कथानक तथा रूढ़ियाँ प्रकारान्तर से नीति–संवाहक होती हैं। इस सन्दर्भ में बिहारी का प्रेमादर्ष गहरा और व्यापक है। प्रेम एक गम्भीर तत्व है, पर्वत के समान ह्रदय वाले व्यक्ति भी उसमें डूब जाते हैं और डूबकर स्वयं को कृतकृत्य समझते हैं, उसमें अरसिक छद्मी के लिए स्थान नहीं है–

गिरि ते ऊँचे रसिक मन, बूडे जहाँ हजार।
वहै सदा पसु नरन कौं प्रेम प्रयोद्य पगार।।

वहीं दूसरी तरफ स्वार्थ प्रेम का दुष्मन है। स्वार्थ के आते ही प्रेम समाप्त हो जाता है। यदि प्रेम का पौधा फूले–फले तो जीवन में स्वार्थ को निकट न आने देना चाहिए। स्नेह में डूबे ह्रदय में स्वार्थ का स्थान नहीं होता। बिहारी कहते हैं–

जो चाहौ चटक न घटै, मैलो होय न मित्त।
रज राजस न छुआइये, नेह चीकने चित्त।

सज्जन स्तुति

सज्जन का प्रेम गम्भीर तथा विकसनषील होता है। बिहारी का आदर्ष है कि मंजीठ के रंग में रंगा हुआ कपड़ा फट भले ही जाये, परन्तु उसका रंग फीका नहीं पड़ता–

चटक न छाड़त घटत है, सज्जन नेह गम्भीरु।
फीको परै न बरु फटै, रंग्यो चोल रंग चीरु।।

सज्जन का संग संकट में भी स्वर्ग से बढ़कर होता है। नरक का डर सदैव के लिए दूर हो जाता है– जो लहिये संग सजन तो, धरक नरक हू कीन।

मध्यवर्गीय परिवार में जन्में बिहारी लोक तत्वों से भली–भाँति परिचित रहे आमेर रियासत के सम्पर्क में आने के बाद वे सामन्ती चेतना तथा नागर संस्कृति पसन्द बन गये थे। उन्हें ग्रामीण तथा नागर दोनों ही संस्कृतियाँ प्रिय रही। लेकिन कुछ दोहों में उन्होंने प्रकारान्तर से ग्रामीण जनों को गुणहीन तथा असभ्य के रूप में व्यंग्यात्मक ढ़ंग से व्यक्त किया है। यथा–

करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि।
रे गंधी मति अंध तू, इतर दिखावत काहि।।
ग ग ग ग ग ग ग
सबै हंसत करतारि दै, नागरता के नांवु।
गयो गरबु गुनकौ सबै, बसे गंवारे गांवु।।

जीवन का लम्बा और गहन अनुभव रखने वाले बिहारी ने जन–सामान्य के निर्मम मनोविज्ञान को भली–भाँति समझा था। समाज का यह कटुसत्य है कि गुणीजन प्रायः उपेक्षा की दृष्टि से देखे जाते हैं और मूढ़ लोगों का सम्मान होता है–

मरतु प्यास पिंजरा परयो सुआ समै के फेर।
आदरु दै दै बोलियतु बाइसु बलि की बेर।।

इतना ही नहीं खल एवं बदमाष लोगों की जगत वन्दना करता है और सहज–सरल गुणी सज्जनों को उपेक्षित ही नहीं कई बार अपमानित भी किया जाता है। जैसे तुलसी ने बताया है कि टेढ़े चन्द्रमा को सब देखते हैं और राहु भी उसे नहीं ग्रसता है। कष्ट और अपमान पहुँचाये बिना जीने वालों को समाज उपेक्षित और परिहास की निगाहों से देखता है–

बसै बुराई जासु तन, ताही को सनमानु।
भलो–भलो कहि छोड़िये, खोटै ग्रह जपुदानु।।

बिहारी को लोकजीवन के कृषि सम्बंधित आर्थिक सरोकारों का गहरा ज्ञान था। उन्होंने विभिन्न फसलों के ऋतु–चक्र को बड़ी शिद्दत के साथ वाणी दी है–

सनु सूक्यौ बीत्यों बनौ, ऊखौ लई उखारि।
हरी हरी अरहरी अजै, धरि धरहरि जिय नारि।।

बिहारी ने उत्तरमध्यकालीन समाज की सांस्कृतिक चेतना को भी व्यक्त किया है। समाज के लोकप्रिय उत्सव, पर्वों, खेल–तमाषों, मेले–ठेले तथा हाट–बाजारों का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। प्रमुख हिन्दू त्योहारों एवं उत्सवों में हरितालिका तीज, होली, संक्रांति, दषहरा, पितृपक्ष, गणेष चतुर्थी सहित ज्योतिष के पोथी–पतरों तथा व्रतादिक का मनोरण वर्णन किया है–

तीज–परब सौतिनु भजे, भूषन बसन सरीर।
सबै मरगजे मुँह करी, इही मरगजै चीर।।
ग ग ग ग ग ग ग
काइ पुन्यनन पाइए वैसे सन्धि सक्रोन
ग ग ग ग ग ग ग
काल्हि दषरहा नीति है धरि मूरख जिय लाज।।

यह काल धार्मिक, राजनैतिक तथा सामाजिक दृष्टि से लगभग प्रभुताहीन तथा लक्ष्यविहीन दषा में जी रहा था। धर्म सत्ता की पवित्रता भी सन्देह के घेरे में आने लगी थी। सामाजिक दृष्टि से पारिवारिक सम्बंधों का परिवेष भी विचारणीय बन गया था। नैतिकता के ह्रास के कई चित्र बिहारी सतसई में दर्ज हुए हैं। बालक को गोद में लेने के बहाने किसी लम्पट द्वारा युवती के वक्ष को छूने की कुचेष्टा समाज की दषा एवं दिषा को व्यक्त करता है–

लरिका लैबे के मिसनु लंगरु मो ढिंग जाइ।
गयौ अचानक आंगुरी छाती छैल छुवाइ।।

अपने पुत्र को किसी और की जारज सन्तान समझकर भी ज्योतिषी का प्रसन्न होना तथा मिश्रजी और युवती के गोपनीय प्रेम के सवाल समाज की शोचनीय दषा के प्रकाषक हैं–

चित पित मारग जोगु गनि, भयौ भयैं सुत सोगु।
फिरि हुलस्यौ जिय जोइसी, समुझै जारज जोगु।।
परतिय–दोष पुरान सुनि, लखि मुलकी सुखदानि।
कसु करि राखि मिश्र हूँ मुँह आई मुस्कानि।।

भाभी को माता तुल्य मानने वाले भारतीय समाज में रीतिकालीन देवर का अनुचित व्यवहार भी प्रष्न खड़े करता है। स्वकीया–परकीया के नायक से गुप्त सम्बन्ध तथा देवर की कुबत और कुत्सित–प्रवृत्तियों के कारण भौजाई का दुःखी होना कष्टकारी लगता है। समाज के आदर्ष क्या हैं और यथार्थ क्या हैं–

कहत न देवर की कुबत, कुलतिय कलह डरानि।
पंजर–गत मंजार ढिंग, सुक ज्यों सूकति जाति।।
मुधर सोति बस पिउ सुनत दुलहिनि दुगुन हुलास।
लखि सखी तन दीठि करि, सगरब, सलज, सहास।।

सामंती दौर में नायिकाओं के चित्रण के बरक्स तत्युगीन समाज की स्त्री के वस्त्राभूषण तथा संस्कार–बोध आदि का परिचय भी मिलता है। कीमती वस्त्राभूषणों और बहुमूल्य सौन्दर्य प्रसाधनों में उरबसी, तरयौना, बेसर, कुण्डल, कमरबंद, बिछिया, झुलमुली, साड़ियाँ, नीले रेषमी महीन वस्त्र, इत्र–फुलेल, शीषी आदि के प्रसंगों से स्त्री–समाज की रुचि और संस्कारों का प्रकाषन होता है।

अज्यौ तरयौना ही रहो, स्रुति सेवत इक रंग।
नाक बास बेसर लहयो, बसि मुकतनि के संग।।

'बिहारी सतसई' की श्रृंगारिकता तथा सामंती दबाव के आरोपों को खारिज करने के लिए हमें तत्कालीन समाज के संस्कारबोध को भी समझना पड़ेगा। इस हेतु डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त के मत से रूबरू होना चाहिये– "यदि उस युग के पाठक या श्रोता का नैतिक स्तर ऊँचा तथा उसकी रूचि परिष्कृत होती तो बिहारी को इस प्रकार के गर्हित दृष्यों के चित्रण का साहस नहीं होता।"[3]

घर जवांई रहने से आदमी का मान कब शनैः शनैः घट जाता है; इसका पता वैसे ही नहीं लगता जैसे पूस के महीने में दिन कब छोटे हो जाते हैं? बिहारी ने इस लोक सत्य इस तरह व्यक्त किया है–

आवत जात न जानियतु, तेजही तजि सियरानु।
घरहं जँवाई लौं घट्यों खरौ पूस दिनभानु।।

नीति सन्दर्भों में सदाचार गुण–ग्राह्यता, संगति, सज्जन–स्तुति, अहंकार आदि विषयों से जुड़े मुक्तक रचकर बिहारी ने लोक को षिक्षित करने का धर्म निभाया है–

कनक कनक ते सो गुनी, मादकता अधिकाय।
वा खाए बौराय नर, वा पाए बौराय।।
बड़े न हूजे गुणन बिनु, बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सो कनक, गहनो, गढ्यो न जाय।।
घरु–धरुं डोलत दिन है, जनु जनु जाचतुनाइ।
दियो लोभ चसमा चखनु, लघु पुनि बड़ो लखाई।।

बिहारी के नीतिपरक दोहों में मानव स्वभाव, लोक व्यवहार एवं तत्युगीन सामाजिक राजनीतिक जीवन का अच्छा परिचय मिलता है। वैसे नीतिपरक दोहों में विचार–तत्व की प्रधानता होती है लेकिन बिहारी का मूल उद्देष्य श्रृंगार–वर्णन ही है। उनके नीति–सन्दर्भ श्रृंगार एवं अलंकार चमत्कार से अनुप्राणित रहे हैं। डॉ.विजयपाल सिंह के अनुसार– 'कान्ता

*Corresponding Author: डॉ.देशराज वर्मा

सम्मत उपदेष' का जो प्रयोजन माना गया है, वह नीति–विषयक दोहों में चरितार्थ होता है। इसके द्वारा मनुष्य स्वभाव एवं लोक व्यवहार विषयक विविध प्रकार के ज्ञान क्षेत्रों का उन्मीलन होता है। बिहारी एक जागरूक कवि थे वे अपने चतुर्दिक वातावरण में हुई असंगतियों एवं विडम्बनात्मक स्थितियों का सूक्ष्म निरीक्षण करते हैं और उससे जो उपदेषात्मक निष्कर्ष निकालते हैं, उन्हें बड़े ही कौषल के साथ अपने दोहों में व्यक्त करते हैं।"[4]

समय एवं परिस्थितियाँ ही व्यक्तित्व का निर्धारण करती हैं। बुरे वक्त आने पर समर्थ–शक्तिषाली भी पराश्रित हो जाते हैं। बिहारी एक दोहे में कहते हैं –

रहयो न काहू काम को सेत न कोऊ लेत।
बाजू टूटे बाज को साहब चारा देत।।

मनः प्रकृति ही आदमी को शत्रु और मित्र बनाती है। तुलसी ने भी 'जाकी की रही भावना.....' कहा है। बिहारी भी कहते हैं–

समै–समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोई।
मन की रूचि जेती जितै, तित तेती रूचि होई।।

सौन्दर्य या काव्य सौन्दर्य के सन्दर्भ में यह मुक्तक सटीक एवं सार्थक है। नम्रता, सादगी और सहनषक्ति ऐसे सदगुण हैं जिनके दम पर निम्न व्यक्ति भी ऊँचा उठकर सम्मान और सफलता पा लेता है। बिहारी इस सत्य को उद्घाटित करते हुए कहते हैं–

नर की अरु नल नीर की गति एकै करि जोइ।
जेतो नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊँचों होइ।।

संगति, दुष्ट व्यक्ति के चरित्र, सदाचार, सामाजिक यथार्थ तथा विसंगतियों पर बिहारी ने अनेक दोहे रचकर समाज–सुधार का मिषन व्यक्त किया है–

नये बिससिये लखि नये दुर्जन दुसह सुभाय।
आँटें परि प्रानन हरै, कांटे लौ लगि पाय।।
बसै बुराई जासुतन, ताहीं कौ सनमानु।
भलौ–भलौ कहि छोडिये, खोटे ग्रह जपदानु।।

बिहारी ने लोकसमाज की इस विसंगति को जानकर दुःख प्रकट किया है कि, दुष्ट–प्रकृति के लोग सम्मानित सामाजिक जीवन के अधिकारी बनते हैं जबकि सज्जन को उदासीन भाव "भला से आदमी है" कहकर उपेक्षित करते हैं। सकारात्मकता को प्रेरित प्रोत्साहित करने की प्रवृत्ति को बढ़ाना होगा अन्यथा नकारात्मकता विजयी होती रहेगी।

तुलसी के 'समरथ को नहीं दोस गुसांई' अर्थात् बड़े आदमियों के दोषों को बतलाना सहज नहीं होता। बड़ों की कारस्तानी लीला बनती है जबकि गरीब का कृत्य अपराध। बिहारी ने एक मुक्तक में लिखा है–

कोकहि सकै बड़ेनु सौं, लखें बड़ीयों भूल।
दीने दई गुलाब की, इन डारनु वे फूल।।

परस्पर उपयोगी–सहयोगी होना तथा मानना ही जीवन का उच्च्य आदर्ष है। जिसकी जहाँ पूर्ति हो जाये वही उसके लिए भगवानतुल्य है। अतः उपयोगिता का चुनाव एवं स्वीकार बड़ी बात है। यथा–

अति अगाध अति औथरो, नदी कूप सर बाय।
सों ताको सागर जहाँ, जाकी प्यास बुझाय।

बिहारी की सीख ऊँचे दर्जे की तथा व्यावहारिक है। बिहारी ने जीवन जीने के लिए आवष्यक खर्च करने की हिदायत दी है। यह जीवनोपयोगी–प्रसंग भी है। अनावष्यक व्यय विनाष का द्वार होता है। वैसे मितव्ययिता बुरी चीज नहीं। संचय की प्रवृत्ति भी अच्छी है अगर खाने खर्चने के बाद बचता है तो अवष्य ही जोड़ना चाहिये। कृपणता में अभावग्रस्त रहना अभिशाप है–

मीतु न नीति गलीतु ह्वै, जौ धरिये धन जोरि।
खाए खरचै जो जुरै, तो जोरिये करोरि।।

गुण ग्राहकता के सन्दर्भ को बिहारी ने लोक जीवन में देखा तथा उसके अनुभव को दरबार में व्यक्त किया–

कर ले सूँधि, सराहि कै, सबै रहे धरि मौन।
गंधी गंध गुलाब को, गँवई गाहक कौन।।

मानव के आदर्ष जीवन में सदाचार का महत्व सदैव रहा है। मध्यकालीन भक्ति साहित्य में विषेषकर कबीर आदि के सन्त काव्य में लोकतांत्रिक मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा और जयघोष दर्ज हुआ है। कबीर ने तो साफ–साफ शब्दों में आडम्बर, भेदभाव तथा समाज सुधाव के सन्दर्भों की वकालत की है। वे भेषधारी पाखण्डी के समक्ष प्रचण्ड हो जाते थे। रीतिकालीन बिहारी ने भी सामाजिक सरोकारों के स्वस्थ रूपों की दरकार करते हुए निष्छल और आडम्बर रहित भक्ति का आदर्ष व्यक्त किया है। सम्भवतः तत्कालीन समाज इन बुराइयों से ग्रस्त था–

जपमाला छापा तिलक, सरै न एको कामु।
मन काँचे नाचै वृथा, सांचै रांचै रामु।।

इस क्रम में डॉ. विजयपाल सिंह का कथन द्रष्टव्य है– "बिहारी के युग में नैतिक मूल्यों के अवमूल्यन के साथ–साथ धार्मिक अवस्था भी काफी जर्जरित थी। समाज में व्याप्त धर्म अनेक अंधविष्वासों, रूढ़ियों, आडम्बरों एवं मत–मतान्तरों से ग्रस्त था। लोग श्रेयस मूल्यों से अधिक प्रेयस् मूल्यों की ओर आकर्षित थे।..... वे ईष्वर आराधना के

निवृत्ति प्रधान सत्यों से विमुख हो भौतिक सुख–सुविधाओं एवं इन्द्रिय विलासिताओं से सम्बन्धित मार्गों की ओर मुड़ रहे थे।"[5]

बिहारी ने तत्कालीन धार्मिक मतमतान्तरों के विवाद से बचकर लोक समाज को अपने आराध्य के प्रति एकनिष्ठ होने का संदेष दिया। सच में इसके मर्म की आज सख्त दरकार है–

दीरघ सांस न लेहि, दुख–सुख सांई नहिं भूलि।
दई दई क्यों करतु है, दई दई सु कबूलि।।
अपने अपने मत लगै, वादी मचावत सोर।
ज्यौं–त्यौं सबको सेइबौ, एकै नन्द किसोर।।

राजनीतिक तथा युगधर्म

महाकवि बिहारी ने दरबारी संस्कृति के दौर में अपने आश्रयदाता की प्रशंसा तथा पाण्डित्यपूर्ण मनोरंजन के समानान्तर निर्भीकता के साथ उनका मार्गदर्षन भी किया है। प्रत्येक मुक्तक पर स्वर्ण अशर्फी के संकल्पित पुरस्कार के बावजूद बिहारी अपने युग धर्म तथा लोकधर्म का भी निर्वाह करते हैं। उनका यह अनूठापन उन्हें रीतिकालीन परिस्थितियों के भीतर सबसे अलहदा बतलाता है। नवौढ़ा रानी के प्रेमपाष में बंधे राजा को "नहिं पराग....." वाली अन्योक्ति लिखकर वे प्रकारान्तर से सामन्तवाद को चुनौती देते हैं। मिर्जा जयसिंह भी गुणी राजा हैं जो कवि के युग धर्म को राजधर्म के समान महत्व देकर कर्त्तव्यपथ का पुनर्वरण करते हैं। राजा या सत्ता का यह चरित्र प्रजा को अपील करता है। एक तरफ मध्यकाल में तुलसी जैसे लोकधर्मी कवि भी राजा को जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।। से अधिक नहीं कह सके या बाँध पाये हैं। इस अर्थ में बिहारी का लेखन लोकधर्म का भी परिचय देने में समर्थ रहा है।

प्रायः लोक राजसत्ता को आदर्ष मानकर उसके कल्याणकारी रूप का आकांक्षी होता है। साथ ही राजा या सत्ता प्रतिष्ठान के व्यवहारों का अनुकरण भी करता है। राजतंत्र में प्रजा को सत्ता के विरोध का अधिकार नहीं होता है, जो बगावत करता है उसे कुचलने की परम्परा रही है। आधुनिक लोकतांत्रिक शासक व्यवस्थाओं की तरह विपक्ष या पत्रकारिता की मुखर आलोचना के सन्दर्भ रीतिकालीन सामंती राजषाही में नहीं मिलते हैं। लेकिन इस दरबारी संस्कृति के विलास तथा लालचपूर्ण परिवेष के भीतर राजा या आश्रयदाता को हिदायतें देना सम्भवतः लोक को रूचता होगा तभी तो आज तक यह सन्दर्भ बिहारी की चेतावनी गाथा का चमकीला बिन्दु बना हुआ है।

राजा–रानी या सामन्तों के रहन–सहन और आचार–विचारों की नकल और पुनरावृत्ति की परम्परा लोक में पायी जाती है। रानी या नायिकाओं के शीष महल, मेहंदी, महावर, हार–आभूषण, इत्र–गुलाब, मान करना, आदि लोक के आकर्षण का विषय बनते रहे हैं। चमकदार और आकर्षक नायिकाएँ सामान्य स्त्रियों के लिए श्रृंगार प्रसाधन तथा आर्थिक स्तर का मापदण्ड बनती हैं।

तत्कालीन परिस्थितियों में राजा और सामन्त अपने निजी हितों के लिए स्वजाति तथा अपने पक्ष के लोगों पर ही अत्याचार कर रहे थे। जन–साधारण इसे जानकर भी मुखर तरीकें से कह नहीं पा रहा था। आमेर के मिर्जा जयसिंह द्वारा षिवाजी के विरोध में गोलबंदी करने के सन्दर्भ को बिहारी समझते हैं और अन्योक्ति के जरिये पुरजोर तरीके से व्यक्त करते हैं–

स्वारथु सुकृतु न श्रम वृथा, देखि विहंग विचारि।
बाज पराये पानि परि, तू पच्छीनु न मारि।।

मुगल बादषाही के सामने देषी राजा कठपुतलीवत नाच रहे थे। वे लोग विधर्मी–विदेषी शासकों के समक्ष पंगु बने हुए थे। उन्हें अपने हित–अहित का भी ध्यान नहीं रह गया था। सभी सामंतों का समूचा परिश्रम और उद्योग सम्राट की शक्ति एवं ऐष्वर्य का परिपुष्ट करने में लगा हुआ था। ऐसे तानाषाही दौर में भी बिहारी युगधर्म का पालन करते हैं चाहे संकेतो–प्रतीकों में ही सही–

दुसह दुराज प्रजानु कौ, क्यों न बड़ै दुःख–दंदु।
अधिक अंधेरी जग कर करत, मिलि मावस रवि चंद।।

यह सत्य है कि दो राजाओं का राज या शक्ति के दो ध्रुवों के बीच प्रायः जनता पिसती रही है। बिहारी देषी रियासतों और राजाओं में आपसीमित्रता तथा सद्भाव के पक्षधर थे। उनका मन्तव्य था कि शक्तिषाली रियासतें बिना अहित किये एक–दूसरे को संगठित कर आमजन में सद्भाव एवं कल्याण साथ होकर कार्य करेगा। महाराजा षिवाजी एवं मिर्जा राजा जयसिंह की मित्रता पर खुष होकर बिहारी लिखता है–

घर–घर तुरकिनि हिंदुनी, देति असीस सराहिं।
पतिनु राखि चादर, चुरी, तैं राखी जयसाहि।।

(बिहारी रत्नाकर–)

लोकजीवन में सौभाग्यवती स्त्रियों का सुहाग राज के मजबूत और संगठित रहने से ही कायम रहेगा। देषी नरेषों की आपसी एकता से आमजन में पहुँचे सकारात्मक संदेष से बिहारी प्रसन्न होते हैं। मिर्जा जयसिंह महाराजा जसवंत सिंह जैसे राजाओं के आपसी शक्ति का बोध कराते हुए वे कहते हैं–

यौं दल कादै बलक तैं, तैं जयसिंह भुवाल।
उदर अघासुर कैं परै, ज्यौं हरि गाई गुवाल।।

(बिहारी रत्नाकर–)

*Corresponding Author: डॉ.देशराज वर्मा

लोक में विष्वास और जिजीविषा कायम रखना शासक का दायित्व होता है। राजा जनता को भयमुक्त तथा आषावादी परिस्थितियाँ मुहैया कराने को कटिबद्ध होता है तभी वह राजा का अधिकारी है। बिहारी ने इस मर्म को समझ कर राजनीतिक सरोकारों के मुक्तक रचे हैं–

रहित न रन जयसाहि मुख, लखि लाखनु की फौज।
जाँचि निराखर ऊ चलै, लै लाखनु की मौज।।

यह सब शासक की शूरवीरता, पराक्रम, युद्ध कौषल, सुसज्जित सेना आदि से सम्भव हो पाता है।

कल्पना की समाहार शक्ति द्वारा लोक बिम्बों की सर्जना

बिहारी ने लोक समाज के आर्थिक–सामाजिक जीवन के चित्रों को कल्पना–षक्ति द्वारा उकेरने में सफलता अर्जित की है। राधा–कृष्ण की लीला भूमि–ब्रज प्रदेष के पषुपालन, गोपालन, गोदोहन, गोचारण सहित विविध स्त्री विषयक आर्थिक क्रियाओं के चित्र आँकें हैं। लोक जीवन में राधा और कृष्ण की व्याप्ति शास्त्रों से अधिक जीवंत रही है इसीलिए राधा–कृष्ण या नायिका–नायका के चित्र उन्हें प्रिय और चित्ताकर्षक लगते हैं। बिहारी ने लोक के इस मनोविज्ञान का समझकर नाना सन्दर्भों की उद्‌भावना की है। इन मुक्तकों के परिपार्ष्वों से लोक झाँकता हुआ दिखाई पड़ता है। दही की हांडी रखते उतारते समय के बिम्ब को इस तरह रूपायित किया गया है–

अहें दहेंड़ी जिनि धरै, जनि तू लेहि उतारि।
नीकैं हैं छीकें छुये, ऐसेहिं रहि नारि।।

ज्योतिष के द्वारा आस्था, शगुन विचार, मुहूर्त आदि निकालने वाले मिश्रों के छद्‌म व्यवहार को बिहारी ने वाणी दी है। ऐसा लगता है कि मिश्रजी एवं प्रेमिका की कहानी के सरोकार तो बहुत पहले से चलते रहे हैं। उनकी कथनी–करनी के अन्तर के उदाहरण तो लोक की जुबान पर रटे हुए रहे हैं–

परितिय दोष पुराण सुन, लखी मुलुकि सुखदानि।
कसि कर राखहु मिश्र हूँ, मुँह आई मुसकानि।।

नाईन के बिना प्रिय द्वारा टेढ़े–मेढ़े लगाये महावर के पीछे की घटना में व्याप्त लोकरूचि को ध्यान में रखकर ही उन्होंने लिखा–

बिथुरयो जावक सौति पग, निरखि हंसी गहि गांस।
सलज हँसौही लखि लियौ, आधी हँसी उसांस।।

आयुर्वेद, ज्योतिष, रंग–विज्ञान, चिकित्सा, गणित, हस्तरेखा विज्ञान आदि की लोक व्याप्ति तथा इनके प्रति जिज्ञासा को भी बिहारी ने वर्णित किया है। लोक तक विस्तार पाये बिना काव्य–कविता का न तो साधारणीकरण होता है और न वह लोकप्रियता पा सकती है। लोक संस्कृति को उजागर करने वाले मुक्तकों की बानगी देखिये–

कहत सबै बेदी दिये, आँक दस गुनो होत।
तिय लिलार बेदी दई, अगणित बढ़त उदोत।।
पत्रा ही तिथि पाइये वा मुख के पास।
नित प्रति पून्यो रहे, आनन ओप उजास।।

रीतिकालीन समाज में धर्म एवं नैतिकता की दषा अच्छी नहीं थी। बिहारी के मुक्तकों के जरिये हमें सामंती मूल्यों की विलासिता के समानान्तर वहाँ की सामाजिकता–सांस्कृतिक स्थितियों का परिचय भी मिलता है– "तत्कालीन समाज के लोगों का नैतिक स्तर अत्यन्त गिरा हुआ था। झूठ बोलना, परदारा गमन, परपुरुष गमन, कृपणता, अंधविष्वास, भक्ति एवं धर्म का आडम्बर आदि ऐसे महत्वपूर्ण तत्व हैं जिनके द्वारा तत्कालीन समाज की संस्कृति का निर्माण हुआ था। झूठ बोलकर एक–दूसरे को ठगना एवं धोखा देना उस युग का केन्द्रीय व्यक्तित्व बन गया था।"[6]

बिहारी ने **लोकोक्ति–मुहावरों** के द्वारा भी लोक जीवन के सरोकारों वाणी दी है। पानी में नमक के मिलने अर्थात् एकमएव होने के सन्दर्भ को इस तरह व्यक्त किया है–

कीनैहु कोटिक जतन, अब कहि काढै कौन।
मो मन मोहन रूपु मिलि, पानी में कौ लौनु।।

मनोवैज्ञानिक भाव–भंगिमाओं की अभिव्यक्ति में बिहारी को सिद्धहस्तता मिली है। उन्होंने नायक–नायिका की विविध चेष्टाओं के बिम्बों के माध्यम से मानव–मात्र की एकता का प्रतिपादन किया है। यहाँ वर्ग–वर्ण का भेद तिरोहित हो जाता है। सामंती श्रृंगार चित्रों तथा वृत्तियों का दायरा लोक समाज को भी अपने में शामिल कर लेता है। मानव–सुलभ चेष्टाएँ राजा–रानी या रंक का भेद नहीं करती है। यथा–

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै भौंहन हँसे, देन कहै नरि जाय।।

प्रेम, विरह और श्रृंगार चित्रों के वर्णन के अगल –बगल तथा पृष्ठभूमि से लोक दृष्टिपात करता दिखता है। इनकी युग–चेतना की व्यंजना विचारणीय है–

दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गाँठ दुर्जन हुये, दई नई यह रीति।।

प्रेम सम्बंधों के लोक प्रभाव तथा सामाजिक प्रतिक्रिया की झलक तत्कालीन समाज के युगबोध की भी द्योतक बन गई है।

*Corresponding Author: डॉ.देशराज वर्मा

आमेर के मिर्जा जयसिंह के दरबार में रहकर बिहारी ने **प्रकृति–चित्रों** के माध्यम से प्रेम, सौन्दर्य, भक्ति, नीति आदि के सामाजिक सन्दर्भों को वाणी प्रदान की है। बिहारी सतसई में वर्णित प्रकृति–परिवेष एक साथ दरबारी एवं लोक समाज को साकार करने में सफल हुआ है। प्रकृति के आलम्बन, उद्दीपन तथा मानवीकरण आदि रूपों का धरातल सामाजिक परिवेष को बखूवी व्यक्त करने में सफल हुआ है। कुछ बानगी द्रष्टव्य हैं–

हठु न हठीली करि सकें, यह पावस ऋतु पाई।
आन गाँठि छुटि जाई त्यौं, मान–गाँठि छुटि जाइ।।
नाहिन ए पावक–प्रबल, लुवै चलैं चहुँ पास।
मानहुं विरह बसन्त के, ग्रीष्म लेत उसास।।

प्रकृति के उपदेषगत रूपांकन द्वारा भी लोक सन्दर्भों की अवतारणा करने में बिहारी को सफलता मिली है–

आवत जात न जानियतु, तजिहिं तजि सियरानु।
घरई जंवाई लौं घट्यों, खरौ पूस दिन–मानु।।
दिन दस आदरू पाइकै, करि लै आपु बखान।
जौ लगि काग! सराध परवु, तौ लगि तौ सनमान।।

साहित्य में भी प्रेम और सौन्दर्य का मनोविज्ञान परस्पर पूरक माना गया है। बिहारी ऐसे सौन्दर्य को पसन्द नहीं करते जिसकी सफलता और परिणति प्रेम में न हों। प्रकारान्तर से बिहारी ने चौगान के खेल को प्रेम की कसौटी कहा है क्योंकि प्रीति–पथ में सब कुछ उद्घाटित करने की शर्त के बावजूद मन की कृत्तियों को गोपनीय रखने का अघोषित आदर्ष भी होता है। जैसे चौगान खेल में मजबूत और प्रषिक्षित छोड़े पर सवाए खिलाड़ी अपनी दौड़ लगाकर गेंद को छिपाकर ले जाता है, उसी प्रकार प्रेम को सफल बनाने के लिए भी सहृदय हृदय के अनेक भावों को गुप्त रखकर ही सफल हो सकता है–

सरस सुमिल चित तुरगै की करि करि अमित उठान।
गोइ निवाहैं जीतिये, खेलि प्रेम चौगान।।

प्रेम, सौन्दर्य का ऐसा रूपक लोक समाज को काम्य रहा है। यह प्रसंग एक साथ जनआदर्ष तथा सामन्ती आदर्ष को छूने में समर्थ है।

समै–समै सुन्दर सबै, रूप–कुरूप न कोय।
मन की रूचि जेती जितै तित तेती रूचि होय।।

बिहारी के मतानुसार सौन्दर्य गोपन का विषय नहीं। वह छिपाने योग्य वस्तु नहीं है जो सुन्दर होगा वह अपनी ओर सहृदय को आकृष्ट करेगा वे कपूर के उदाहरण द्वारा सौन्दर्य के सार्वजनीकरण की घोषणा करते है, परन्तु इसके खतरे भी कम नहीं रहे होंगे–

सीतल तारु सुगंध की महिमा घटी न मूर।
पीनस बारैं ज्यों तज्यों सारा जानि कपूर।।
ग ग ग ग ग ग ग
बाल छबीनी तियन में बैठी आपु छिपाइ।
अरगट हूँ पानूस सी, परगट परै लखाइ।।
ग ग ग ग ग ग ग
मोहि भरोसो रीझि है, उझकि झोकि इकबार।
रूप रिझावन हार है, ये नैना रिझवार।।

तत्कालीन समाज में विभिन्न धर्मोपदेषकों, अकबर के दीन ए इलाही, तथा कृष्ण भक्ति के पंथनिरपेक्ष लोकानुरंजन के समन्वित प्रभाव से समाज कई मसलों में उदार हो रहा था। डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त तो यहाँ तक कहते हैं– "राधा–कृष्ण की श्रृंगारी लीलाएँ अब जनता के हृदय में भली प्रकार प्रतिष्ठित हो गई थी। इनकी स्वाभाविकता, वास्तविकता एवं नैतिकता के प्रति लोगों के मन में कोई सन्देह नहीं रह गया था।"[7]

व्यंग्य तथा उपालम्भ मानव की तल्ख मनोवृत्तियाँ हैं। लोकजीवन में ऐसे व्यंग्य–प्रयोगों की भरमार मिलती है। बिहारी ने भगवान कृष्ण से स्वयं के उद्धार में हो रही देरी को लक्षित कर उपालम्भ व्यक्त किया है। ऐसे प्रसंगों से लोक की समीपता का आभास होता है।

उपालम्भ– **कौन भाँति रहि है बिरदु, अब देखिवी मुरारि।**
बीधे मोसौं आइ कै, गीधे गीधहिं तारि।।
बंधु भये का दीन के, को तार्‌यो रघुराइ।
तूठे–तूठे फिरत हो झूठे बिरद कहाइ।।
थोरे हीगुन रीझते, बिसराई वह बानि।
तुमहूं कान्ह मनो भए, आज काल्हि के दानि।।
मोहिं तुम्हें बाढ़ी बहस, को जीतै जदुराज।
अपने–अपने बिरद की, दुहुन निबाहन लाज।।

इस तरह महाकवि बिहारी ने अपनी युगीन परिस्थितियों से सम्बंधित नीति एवं धर्म विषयक दोहों की रचना की है। सच में "इन दोहों द्वारा मानवीय स्वभाव एवं लोक–व्यवहार का अच्छा ज्ञान मिलता है साथ ही बिहारी की पर्यवेक्षण शक्ति का भी स्पष्ट प्रमाण दिखाई देता है। इनके नीति विषयक दोहे अत्यन्त उच्च कोटि के हैं.....।"[8] 'दरबारी वातावरण

*Corresponding Author: डॉ.देशराज वर्मा

एवं संस्कृति से घिरे होने के बावजूद सामान्य जन–जीवन की गतिविधियों एवं अवस्थाओं के दर्षन उनकी सतसई में मिलते है।'[9]

इस तरह बिहारी ने अपने युगबोध को साहित्यिक विवेक के जरिये रूपायित किया है। डॉ. विजयपाल सिंह का मत यहाँ द्रष्टव्य है– "उनकी सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक चेतना स्पष्ट रूप से मुखा नहीं हुई है अपितु अपनी कलात्मकता की रक्षा करते हुए व्यक्त हुई है। कहीं भी ये चेतनाएँ उनके काव्य के सौन्दर्य को नष्ट नहीं करती। उनका युगबोध उनके काव्य पर हावी हो जाता है। शुद्ध काव्यात्मक रचनाओं में से ये सारी चेतनाएँ झलकती हैं।..... बिहारी का समूचा युगबोध परोक्ष रूप से उनके काव्यों के माध्यम से प्रकट होता है।"[10]इस तरह 'बिहारी सतसई' में भक्ति, नीति, राजनीति तथा श्रृंगार विषयक लोक–संदर्भों का अनूठा चित्रण हुआ है। सतसई का कैनवास युगधर्म के अनुकूल ही कहा जायेगा।

संदर्भ सूची –

1 बिहारी वैभव–डॉ.विजयपाल सिंह–पृ. 102 : राज.हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर : 1992
2 हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास– डॉ.विष्वनाथ त्रिपाठी, पृ. 59–60 ओरियंट ब्लैकस्वॉन प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद, 2007
3 महाकवि बिहारी का श्रृंगार–निरूपण– डॉ.गणपति चन्द्र गुप्त, पृ. 03 : नेषनल पब्लिषिंग हाउस, 1972
4 बिहारी वैभव– डॉ.विजयपाल सिंह, पृ. 77, राज.हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर, 1992
5 बिहारी वैभव– डॉ. विजयपाल सिंह – पृ. 95, राज. हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुरः 1992
6 बिहारी वैभव–डॉ. विजयपाल सिंह, पृ. 94 राज.हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर 1992
7 महाकवि बिहारी का श्रृंगार निरुपण– डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, पृ. 02 : नेषनल पब्लिषिंग हा., 1972
8 बिहारी वैभव– डॉ. विजयपाल सिंह, पृ. 81
9 बिहारी वैभव– डॉ. विजयपाल सिंह, पृ. 88, राज.हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1992
10 बिहारी वैभव– डॉ. विजयपाल सिंह, पृ. 101 राज.हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1992

*Corresponding Author: डॉ.देशराज वर्मा